

जय जपत तिहारो नाम कोय, लख पुत्र पौत्र कुल वृद्धि होय।
 जय भरे लक्ष अतिशय भण्डार, दारिद्रतनो दुःख होय छार॥
 जय चोर अगानि डाकिन पिशाच, अरु ईति-भीति सब नसत साँच।
 जय तुम सुमरत सुख लहत लोक, सुर असुर नमत पद देत धोक॥

ॐ हीं श्रीमन्वादिचारणद्विधरसपूर्णिभ्यो अनर्थपदप्राप्तये जयमालापूर्णार्थं निर्वपामीति स्वाहा।

(रोला)

ये सातों मुनिराज, महातप लछमी धारी।
 परमपूज्य पद धरैं, सकल जग के हितकारी॥
 जो मन वच तन शुद्ध, होय सेवे औ ध्यावै।
 सो जन-मन ‘रंगलाल’, अष्ट क्रद्धिन कौं पावै॥

(दोहा)

नमन करत चरनन परत, अहो गरीब निवाज।
 पंच परावर्तननितैं, निरवारो क्रषिराज॥

(पुष्पाभ्जलिं क्षिपेत्)

सरस्वती पूजन

(पं. द्यानतरायजी कृत)

(दोहा)

जनप-जरा-मृतु छय करै, हरै कुनय जड़रीति।
 भवसागरसों ले तिरै, पूजैं जिन वच प्रीति॥

ॐ हीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवैषट्।

ॐ हीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।

ॐ हीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(त्रिभंगी)

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुखसंगा।
 भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषा निवारी हितचंगा॥
 तीर्थकर की धुनि, गणधरने सुनि, आंग रचे चुनि ज्ञानमई।
 सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ हीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया रंग भरी ।
 शारदपद वंदों, मन अभिनंदों, पाप निकंदों दाह हरी ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।
 सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं ।
 बहुभक्ति बढाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।
 बहुफूल सुवासं, विमल प्रकाशं, आनन्दरासं लाय धेरे ।
 मम काम मिटायो, शील बढायो, सुख उपजायो दोष हरे ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।
 पक्वानबनाया, बहुदृतलाया, सब विधिभाया मिष्ट महा ।
 पूजूँ थुति गाऊँ, प्रीति बढाऊँ, क्षुधा नशाऊँ हर्ष लहा ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. निर्वपामीति स्वाहा ।
 करि दीपक ज्योतं, तमच्छ्य होतं, ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै ।
 तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान बढ़ै ।
 तीर्थकर की धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई ।
 सो जिनवर वानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
 शुभगंध दशोंकर, पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं ।
 सब पाप जलावैं, पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
 बादाम छुहारी, लोंग सुपारी, श्रीफल भारी, ल्यावत हैं ।
 मनवांछित दाता, मेट असाता, तुम गुन माता गावत हैं ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
 नयनन सुखकारी, मूदु गुणधारी, उज्ज्वल भारी मोल धैरै ।
 शुभगंध सम्हारा, वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करैं ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ।
 जल चन्दन अच्छत, फूल चरु चत, दीप धूप फल अति लावैं ।
 पूजा को ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत सुख पावैं ॥ तीर्थकर. ॥
 ३० हीं श्रीजिनमुखोदभूतसरस्वतीदेव्यै अर्द्ध्यपदप्राप्तये अर्द्ध्य निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(सोरठा)

ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल ।

नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

(चौपाई)

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस्र प्रमानो ।

दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस्र गुरु भाषं ॥

तीजो ठाना अंग सु जानं, सहस्र बियालिस पद सरधानं ।

चौथो समवायांग निहारं, चौंसठ सहस्र लाख इक धारं ॥

पंचम-व्याख्या प्रज्ञसि दरसं, दोय लाख अट्टाइस सहस्रं ।

छट्ठो ज्ञातृकथा विस्तारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं ॥

सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस्र ग्यार लाख भंगं ।

अष्टम अन्तःकृत दश ईसं, सहस्र अट्टाइस लाख तेर्ईसं ॥

नवम अनुत्तरदश सुविशालं, लाख बानवै सहस्र चवालं ।

दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरानवै सोल हजारं ॥

ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं, एक कोड़ चौरासी लाखं ।

चार कोड़ अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु भाखं ।

द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं, इक सौ आठ कोड़िपनवेदं ।

अड़सठ लाख सहस्र छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥

इक सौं बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो ।

ठावन सहस्र पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने ॥

कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस्र चुरासी छह सौ भाखं ।

साढ़े इकवीस श्लोक बताये, एक-एक पद के ये गाये ॥

ॐ हीं श्रीजिनमुखोद्भूतसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्त्ये जयमालापूर्णार्थ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

जा वाणी के ज्ञान तैं, सूझै लोक-अलोक ।

‘द्यानत’ जग जयवन्त हो, सदा देत हों धोक ॥

(पुष्पाज्जलि क्षिपेत्)

अक्षय-तृतीया पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(ताट्क)

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, ऋषभदेव ने दान लिया।
नृप श्रेयांस दान-दाता थे, जगती ने यशगान किया॥
अहो दान की महिमा, तीर्थकर भी लेते हाथ पसार।
होते पंचाश्चर्य पुण्य का, भरता है अपूर्व भण्डार॥
मोक्षमार्ग के महाब्रती को, भावसहित जो देते दान।
निजस्वरूप जप वह पाते हैं, निश्चित शाश्वत पदनिर्वाण॥
दान तीर्थ के कर्ता नृप श्रेयांस हुए प्रभु के गणधर।
मोक्ष प्राप्त कर सिद्ध लोक में, पाया शिवपद अविनश्वर॥
प्रथम जिनेश्वर आदिनाथ प्रभु! तुम्हें नमन हो बारम्बार।
गिरि कैलाश शिखर से तुमने, लिया सिद्धपद मंगलकार॥
नाथ आपके चरणाम्बुज में, श्रद्धा सहित प्रणाम करूँ।
त्यागधर्म की महिमा पाऊँ, मैं सिद्धों का धाम वरूँ।
शुभ वैशाख शुक्ल तृतीया का, दिवस पवित्र महान हुआ।
दान धर्म की जय-जय गूँजी, अक्षय पर्व प्रधान हुआ॥

ॐ हीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवैष्टु।

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ हीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरचन्द)

कर्मोदय से प्रेरित होकर, विषयों का व्यापार किया।
उपादेय को भूल हेय तत्त्वों, से मैंने प्यार किया॥
जन्म-मरण दुख नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
अक्षय-तीर्तीया पर्व दान का, नप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

मन-वच-काया की चंचलता, कर्म आस्रव करती है।

चार कषायों की छलना ही, भवसागर दुःख भरती है॥

भवाताप के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।

अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रिय विषयों के सुख क्षणभंगुर, विद्युत-सम चमक अथिर।

पुण्य-क्षीण होते ही आते, महा असाता के दिन फिर॥

पद अखण्ड की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

शील विनय ब्रत तप धारण, करके भी यदि परमार्थ नहीं।

बाह्य क्रियाओं में उलझे तो, वह सच्चा पुरुषार्थ नहीं॥

कामबाण के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

विषय लोलुपी भोगों की, ज्वाला में जल-जल दुख पाता।

मृग-तृष्णा के पीछे पागल, नर्क-निगोदादिक जाता॥

क्षुधा व्याधि के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधासोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानस्वरूप आत्मा का, जिसको श्रद्धान नहीं होता।

भव-वन में ही भटका करता, है निर्वाण नहीं होता॥

मोह-तिमिर के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म फलों का वेदन करके, सुखी दुखी जो होता है।

अष्ट प्रकार कर्म का बन्धन, सदा उसी को होता है॥

कर्म शत्रु के नाश हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥टेक॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो बन्धन से विरक्त होकर, बन्धन का अभाव करता।

प्रज्ञाईनी ले बन्धन को, पृथक् शीघ्र निज से करता॥

महामोक्ष-फल प्राप्ति हेतु, मैं आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ।
 अक्षय-तृतीया पर्व दान का, नृप श्रेयांस सुयश गाऊँ॥
 ॐ हीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

पर मेरा क्या कर सकता है, मैं पर का क्या कर सकता ।
 यह निश्चय करनेवाला ही, भव-अटवी के दुख हरता ॥
 पद अनर्थ की प्राप्ति हेतु मैं, आदिनाथ प्रभु को ध्याऊँ॥ टेक ॥

ॐ हीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्थपदप्राप्तये अर्थ निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

चार दान दो जगत में, जो चाहो कल्याण ।
 औषधि भोजन अभय अरु, सद् शास्त्रों का ज्ञान ॥

(ताटंक)

पुण्य पर्व अक्षय तृतीया का, हमें दे रहा है यह ज्ञान ।
 दान धर्म की महिमा अनुपम, श्रेष्ठ दान दे बनो महान ॥
 दान धर्म की गौरव गाथा, का प्रतीक है यह त्यौहार ।
 दान धर्म का शुभ प्रेरक है, सदा दान की जय-जयकार ॥
 आदिनाथ ने अर्ध वर्ष तक, किये तपस्या-मय उपवास ।
 मिली न विधि फिर अन्तराय, होते-होते बीते छह मास ॥
 मुनि आहारदान देने की, विधि थी नहीं किसी को ज्ञात ।
 मौन साधना में तन्मय हो, प्रभु विहार करते प्रख्यात ॥
 नगर हस्तिनापुर के अधिपति, सोम और श्रेयांस सुभ्रात ।
 ऋषभदेव के दर्शन कर, कृतकृत्य हुए पुलकित अभिजात ॥
 श्रेयांस को पूर्वजन्म का, स्मरण हुआ तत्क्षण विधिकार ।
 विधिपूर्वक पड़गाहा प्रभु को, दिया इक्षुरस का आहार ॥
 पंचाश्चर्य हुए प्रांगण में, हुआ गगन में जय-जयकार ।
 धन्य-धन्य श्रेयांस दान का, तीर्थ चलाया मंगलकार ॥

दान-पुण्य की यह परम्परा, हुई जगत में शुभ प्रारम्भ ।
 हो निष्काम भावना सुन्दर, मन में लेश न हो कुछ दम्भ ॥
 चार भेद हैं दान धर्म के, औषधि-शास्त्र-अभय-आहार ।
 हम सुपात्र को योग्य दान दे, बनें जगत में परम उदार ॥
 धन वैभव तो नाशवान हैं, अतः करें जी भर कर दान ।
 इस जीवन में दान कार्य कर, करें स्वयं अपना कल्याण ॥
 अक्षय तृतीया के महत्व को, यदि निज में प्रकटायेंगे ।
 निश्चित ऐसा दिन आयेगा, हम अक्षय-फल पायेंगे ॥
 हे प्रभु आदिनाथ! मंगलमय, हम को भी ऐसा वर दो ।
 सम्यग्ज्ञान महान सूर्य का, अन्तर में प्रकाश कर दो ॥
 ॐ हीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमालापूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(दोहा)

अक्षय तृतीया पर्व की, महिमा अपरम्पार ।
 त्याग धर्म जो साधते, हो जाते भव पार ॥

(पुष्पाङ्गलिं क्षिपेत्)

दर्शन-स्तुति

निरखत जिनचन्द्र-वदन स्व-पद सुरुचि आई ।
 प्रकटी निज आन की पिछान ज्ञान भान की ।
 कला उद्योत होत काम-जामनी पलाई ॥ निरखत ॥
 शश्वत आनन्द स्वाद पायो विनस्यो विषाद ।
 आन में अनिष्ट-इष्ट कल्पना नसाई ॥ निरखत ॥
 साधी निज साध की समाधि मोह-व्याधि की ।
 उपाधि को विराधि कैं आराधना सुहाई ॥ निरखत ॥
 धन दिन छिन आज सुगुनि चिन्ते जिनराज अबै ।
 सुधरो सब काज ‘दौल’ अचल रिद्धि पाई ॥ निरखत ॥

-- पं. दौलतराम

रक्षाबन्धन पर्व पूजन

(श्री राजमलजी पवैया कृत)

(श्री अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनिवर पूजन)

(छन्द-ताटंक)

जय अकम्पनाचार्य आदि सात सौ साधु मुनिव्रत धारी ।

बलि ने कर नरमेघ यज्ञ उपसर्ग किया भीषण भारी ॥

जय जय विष्णुकूमार महामुनि ऋद्धि विक्रिया के धारी ।

किया शीघ्र उपसर्ग निवारण वात्सल्य करुणाधारी ॥

रक्षा-बन्धन पर्व मना मुनियों का जय-जयकार हुआ।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा के दिन घर-घर मंगलाचार हुआ ॥

श्री मुनि चरणकमल में वन्दू पाऊं प्रभु सम्यगदर्शन।

भक्ति भाव से पूजन करके निज स्वरूप में रहूँ मगन ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र अवतर अवतर संवैषष्ट ।

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि समशतकमुनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः,

ॐ हौं श्री विष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्य आदि सप्तशतकमुनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

जन्म-मरण के नाश हेतु प्रासुक जल करता हूँ अर्पण।

राग-द्वेष परिणति अभाव कर निज परिणति में करूँ रमण ॥

श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करुँ नमन ।

मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकृमार महा मुनि को वन्दन ॥

३० हीं श्री विष्णुकमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

भव सन्ताप मिटाने को मैं चन्द्रन करता हूँ अर्पण।

देह भोग भव से विरक्त हो निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥

ॐ ह्रीं श्री विष्णुकूमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमूनिभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।

अक्षयपद अखंड पाने को अक्षत ध्वल करूँ अर्पण ।

हिंसादिक पापों को क्षय कर निज परिणति में करूँ रमण ॥श्री. ॥

ॐ हीं श्री विष्णुकमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमनिभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।

कामबाण विध्वंस हेतु मैं सहज पुष्प करता अर्पण ।
क्रोधादिक चारों कषाय हर निज परिणति में करूँ रमण ॥
श्री अकम्पनाचार्य आदि मुनि सप्तशतक को करूँ नमन ।
मुनि उपसर्ग निवारक विष्णुकुमार महा मुनि को बन्दन ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः पुर्वं निर्वपामीति स्वाहा ।
क्षुधारोग के नाश हेतु नैवेद्य सरस करता अर्पण ।

विषयभोग की आकांक्षा हर निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
चिर मिथ्यात्व तिमिर हरने को दीपञ्जोति करता अर्पण ।

सम्यग्दर्शन का प्रकाश पा निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।
अष्ट कर्म के नाश हेतु यह धूप सुगन्धित है अर्पण ।

सम्यग्ज्ञान हृदय प्रकटाऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।
मुक्ति प्राप्ति हित उत्तम फल चरणों में करता हूँ अर्पण ।

मैं सम्यक्चारित्र प्राप्त कर निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।
शाश्वत पद अनर्थ्य पाने को उत्तम अर्थ्य करूँ अर्पण ।

रत्नत्रय की तरणी खेऊँ निज परिणति में करूँ रमण ॥ श्री ॥

ॐ हीं श्रीविष्णुकुमार एवं अकम्पनाचार्यादिसप्तशतकमुनिभ्यो अनर्थपदप्राप्तये अर्थ्य
निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

वात्सल्य के अंग की, महिमा अपरम्पार ।

विष्णुकुमार मुनीन्द्र की, गूँजी जय-जयकार ॥

(तांटक)

उज्जयनी नगरी के नृप श्रीवर्मा के मंत्री थे चार।
बलि, प्रहलाद, नमुचि वृहस्पति चारों अभिमानी सविकार ॥
जब अकम्पनाचार्य संघ मुनियों का नगरी में आया।
सात शतक मुनि के दर्शन कर नृप श्रीवर्मा हर्षया ॥
सब मुनि मौन ध्यान में रत, लख बलि आदिक ने निंदा की।
कहा कि मुनि सब मूर्ख, इसी से नहीं तत्त्व की चर्चा की ॥
किन्तु लौटते समय मार्ग में, श्रुतसागर मुनि दिखलाये।
वाद-विवाद किया श्री मुनि से, हरे, जीत नहीं पाये ॥
अपमानित होकर निशि में मुनि पर प्रहार करने आये।
खड़ा उठाते ही कीलित हो गये हृदय में पछताये ॥
प्रातः होते ही राजा ने आकर मुनि को किया नमन।
देश-निकाला दिया मंत्रियों को तब राजा ने तत्क्षण ॥
चारों मंत्री अपमानित हो पहुँचे नगर हस्तिनापुर।
राजा पद्मराय को अपनी सेवाओं से प्रसन्न कर ॥
मुँह-माँग वरदान नृपति ने बलि को दिया तभी तत्पर।
जब चाहूँगा तब ले लूँगा, बलि ने कहा नम्र होकर ॥
फिर अकम्पनाचार्य सात सौ मुनियों सहित नगर आये।
बलि के मन में मुनियों की हत्या के भाव उदय आये ॥
कुटिल चाल चल बलि ने नृप से आठ दिवस का राज्य लिया।
भीषण अग्नि जलाई चारों ओर द्वेष से कार्य किया ॥
हाहाकार मचा जगती में, मुनि स्व ध्यान में लीन हुए।
नश्वर देह भिन्न चेतन से, यह विचार निज लीन हुए ॥
यह नरमेघ यज्ञ रच बलि ने किया दान का ढोंग विचित्र।
दान किमिच्छक देता था, पर मन था अति हिंसक अपवित्र ॥

पद्मराय नृप के लघु भाई, विष्णुकुमार महा मुनिवर ।
 वात्सल्य का भाव जगा, मुनियों पर संकट का सुनकर ॥
 किया गमन आकाश मार्ग से, शीघ्र हस्तिनापुर आये ।
 ऋद्धि विक्रिया द्वारा याचक, वामन रूप बना लाये ॥
 बलि से माँगी तीन पाँव भू, बलिराजा हँसकर बोला ।
 जितनी चाहो उतनी ले लो, वामन मूर्ख बड़ा भोला ॥
 हँसकर मुनि ने एक पाँव में ही सारी पृथ्वी नापी ।
 पग द्वितीय में मानुषोत्तर पर्वत की सीमा नापी ॥
 ठौर न मिला तीसरे पग को, बलि के मस्तक पर रखा ।
 क्षमा-क्षमा कह कर बलि ने, मुनिचरणों में मस्तक रखा ॥
 शीतल ज्वाला हुई अग्नि की श्री मुनियों की रक्षा की ।
 जय-जयकार धर्म का गूँजा, वात्सल्य की शिक्षा दी ॥
 नवधा भक्तिपूर्वक सबने मुनियों को आहार दिया ।
 बलि आदिक का हुआ हृदय परिवर्तन जय-जयकार किया ॥
 रक्षासूत्र बाँधकर तब जन-जन ने मंगलाचार किये ।
 साधर्मी वात्सल्य भाव से, आपस में व्यवहार किये ॥
 समकित के वात्सल्य अंग की महिमा प्रकटी इस जग में ।
 रक्षा-बन्धन पर्व इसी दिन से प्रारम्भ हुआ जग में ॥
 श्रावण शुक्ल पूर्णिमा दिन था रक्षासूत्र बाँधा कर में ।
 वात्सल्य की प्रभावना का आया अवसर घर-घर में ॥
 प्रायश्चित्त ले विष्णुकुमार ने पुनः ब्रत ले तप ग्रहण किया ।
 अष्ट कर्म बन्धन को हरकर इस भव से ही मोक्ष लिया ॥
 सब मुनियों ने भी अपने-अपने परिणामों के अनुसार ।
 स्वर्ग-मोक्ष पद पाया जग में हुई धर्म की जय-जयकार ॥
 धर्म भावना रहे हृदय में, पापों के प्रतिकूल चलूँ ।
 रहे शुद्ध आचरण सदा ही धर्म-मार्ग अनुकूल चलूँ ॥